पारस परस

वर्ष-10 अंक-2 अप्रैल-जून, 2020, रजि. नं.:यू.पी. एच.आई.एन./2011/39939 पृष्ठ -40 मूल्य- 25

महावीर प्रसाद द्विवेदी

जन्म-15 मई 1864 निधन- 29 दिसम्बर 1938

जहाँ हुए व्यास मुनि–प्रधान,
रामादि राजा अति कीर्तिमान।
जो थी जगत्पूजित धन्य–भूमि ,
वही हमारी यह आर्य–भूमि ।।
जहाँ हुए साधु हा महान
थे लोग सारे धन–धर्मवान।
जो थी जगत्पूजित धर्म–भूमि,
वही हमारी यह आर्य–भूमि।।
जहाँ सभी थे निज धर्म धारी,
स्वदेश का भी अभिमान भारी ।
जो थी जगत्पूजित पूज्य–भूमि,
वही हमारी यह आर्य–भूमि।।

वर्ष : 10 अंक : 2 अप्रैल-जून, 2020 रजि. नं. : यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस परस

हिन्दी काव्य की विविध विधाओं
की त्रैमासिक पत्रिका

संरक्षक
डॉ. शम्भुनाथ

प्रधान संपादक
प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित

संपादक
डॉ. अनिल कुमार

कार्यकारी संपादक
सुशील कुमार अवस्थी

संपादकीय कार्यालय
538 क/1324, शिवलोक
त्रिवेणी नगर तृतीय, लखनऊ
मो. 9935930783
Email: paarasparas.lucknow@gmail.com

लेआउट एवं टाइप सेटिंग
मेट्रो प्रिंटर्स
लखनऊ

स्वामी प्रकाशक मुद्रक एवं संपादक डॉ. अनिल कुमार द्वारा प्रकाश पैकेजर्स, 257, गोलागंज, लखनऊ उ.प्र. से मुद्रित तथा ए-1/15 रश्मि, खण्ड, शारदा नगर योजना, लखनऊ उ.प्र. से प्रकाशित।
सम्पादकः डॉ. अनिल कुमार

पारस परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

संपादकीय		2
श्रद्धा सुमन		
छोड़ गये क्यूँ हमें अकेले	डॉ. अनिल कुमार पाठक	4
कालजयी		
गीत की कड़ी	पारस नाथ पाठक 'प्रसून'	5
नव-निर्माण	महेन्द्र भटनागर	6
भारत वर्ष	महावीर प्रसाद द्विवेदी	7
माटी का कर्ज	महावीर प्रसाद 'मधुप'	8
समय के सारथी		
छाया मत छूना	गिरिजा कुमार माथुर	9
जंगल	कीर्ति नारायण मिश्र	10
नश्तर और नुस्खा	अमोघ नारायण झा	11
कहाँ आ गये	श्रीकान्त जोशी	12
मौन	महेश चन्द्र द्विवेदी	13
शीर्षक की तरह	भोला पंडित प्रणयी	14
मन! कितना अभिनय शेष रहा	भारत भूषण	15
कलरव		
जब सूरज जग जाता है	रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'	16
टूट गया किस्से का तार	प्रकाश मनु	17
टीचर जी मत पकड़ो कान	डॉ. रूप चन्द्र शास्त्री 'मयंक'	18
लल्लू जी की पतंग	शादाब आलम	19
नारी स्वर		
वे बहुत सारे हैं	भावना मिश्र	20
ओ! दीप जलाने वाले	बीना रानी गुप्ता	21
निरर्थक है	प्रीति अज्ञात	22
सिमटती नदी	निधि सक्सेना	23
तीन औरतें	इन्दु जैन	24
तोड़ देती है बेड़ियाँ अक्सर	अलका मिश्रा	25
आँखों में आँसू होठों पर दुआ	अनामिका तिवारी	26
प्रेम कविता	नंदा पाण्डेय	27
जो कह न सकूँ मैं तुमसे	तारादेवी पांडेय	28
वेदना	छाया त्रिपाठी	29
नवोदित रचनाकार		
हम सर वाले हैं	प्रमोद तिवारी	30
भीड़ में सबसे अलग,सबसे जुदा चलता रहा	जहीर कुरैशी	31
नारी	पं. चतुर्भुज मिश्र	32
छोड़ आया हूँ	गौरव गिरिजा शुक्ला	33
सीने में क्या है तुम्हारे	अक्षय उपाध्याय	34
अनावृत	कमलेश	35
वादे थे फिर वादे ही टूट गए तो क्या कीजे	उपेन्द्र कुमार	36
गीतों में मेरे डूबा तो	आनन्द तिवारी	37
तुम लौट आना	आनंद गुप्ता	38
बसंत का गीत	अपूर्व शुक्ल	39
मेरे देश में	गोपाल कृष्ण भट्ट	40

ज्ञान का विस्तार ही नहीं इसकी गहनता भी महत्वपूर्ण है

बचपन में एक दृष्टांत कहानी के रूप में या कभी–कभी उपदेश के रूप में सुनाया व समझाया जाता था, जो इस प्रकार है :– एक गहरा कुआं था, जिसमें कुछ मेंढक भी रहते थे। उसी कुएं के पास एक बड़ा तालाब था, उसमें भी मेंढक रहते थे। एक दिन तालाब का मेंढक उछलते–उछलते कुएं में गिर गया। कुएं के मेंढकों ने उसे घेर लिया और अजनबी समझकर उससे पूछताछ करने लगे। एक मेंढक ने पूछा, 'भाई! तुम कहाँ से आए हो? तुम लगते तो हमारी जाति–प्रजाति के हो, परन्तु इससे पहले इस कुएं में तुमको हम लोगों ने कभी नहीं देखा।' तालाब के मेंढक ने कहा, 'भाई! सच में, मैं इस कुएं का निवासी नहीं हूँ। मैं तो बाहर बड़े तालाब में रहता हूँ, किन्तु उछलते–उछलते मैं इस कुएं में आ गिरा और निश्चित रूप से तुम लोगों के लिए अजनबी हूँ।' कुएं के मेंढकों ने उसके साथ कुछ बुरा नहीं किया बल्कि उससे यह जिज्ञासा व्यक्त की, 'तुम जिस तालाब में रहते हो क्या वह हमारे कुएं से बड़ा है? तालाब के मेंढक ने कहा, 'निश्चित रूप से मेरा तालाब कुएं से कई गुना बड़ा है और यह कुआं तो उस तालाब के एक कोने से भी छोटा है।' तालाब के मेंढक की इस बात को सुनकर कुएं के मेंढकों के अन्दर हीन भावना का जन्म हो गया और वे सोचने लगे कि हम कितनी छोटी सी जगह में रहते हैं और यह मेंढक कितने बड़े स्थान पर रहता है। तालाब के मेंढक को जब कुएं के मेंढकों की हीन भावना का ज्ञान हुआ तो उसके अन्दर श्रेष्ठता की भावना आ गई कि ये सब मेंढक कितनी छोटी जगह में रहते हैं। लेकिन उसे शायद अपने भविष्य का पता नहीं था क्योंकि वह अपनी इस श्रेष्ठता की भावना में भूल गया था कि कुएं से उसका निकल पाना मुश्किल ही नहीं असंभव था। तालाब के मेंढक को तालाब के विस्तृत होने का ज्ञान तो था परन्तु उसके सभी पहलुओं का गहन ज्ञान नहीं था। कुएं के मेंढक के पास तालाब जैसा विस्तृत फलक नहीं था लेकिन कुएं के सीमित फलक में भी उसकी गहराई का पूरा ज्ञान था। गलती दोनों की थी। जहाँ तालाब के मेंढक को विस्तार का अहंकार हो गया वहीं कुएं के मेंढक को उसकी गहराई का भान नहीं रहा। शायद तालाब के मेंढक को यह बात समझ में नहीं आ रही थी कि जहाँ तालाब विस्तार का प्रतीक है, वहीं कुआं गहराई का प्रतीक है। विस्तार जहाँ हमारे ज्ञान को व्यापक बनाता है, वहीं गहराई हमें किसी विषय में अत्यन्त प्रवीण और कुशल बनाती है, हमें विशेषज्ञ बनाती है।

आज के समय में व्यक्तित्व का बहुआयामी होना जितना आवश्यक है उससे ज़्यादा आवश्यकता विषय विशेषज्ञता की है क्योंकि बहुत सी बातों को सीखने के क्रम में हम उन विषयों का आवश्यक एवं महत्वपूर्ण ज्ञान अर्जित नहीं कर पाते। कहीं न कहीं यह ज्ञान या विद्या अल्प होती है और अल्पज्ञ या अधकचरा ज्ञान रखने वाला व्यक्ति कभी भी पूर्ण सफल नहीं हो पाता भले ही

वह तत्काल सफलता प्राप्त कर ले। इसीलिए पारम्परिक रूप से यह कहावत है कि दो नावों पर सवार होने वाला व्यक्ति कभी भी सुरक्षित पार नहीं उतर पाता।

उक्त कहानी यह संकेत करती है कि हमें अपने व्यक्तित्व में संतुलन बनाए रखना चाहिए क्योंकि जहाँ हीन भावना हमारे मन–मस्तिष्क को कुण्ठित कर देती है, वहीं श्रेष्ठता की भावना विश्वास का अतिरेक पैदा करती है और दोनों स्थितियाँ व्यक्तित्व के विकास के लिए बाधक हैं। इसी तरह ज्ञान का विस्तार होना श्रेष्ठ व्यक्तित्व के लिए महत्वपूर्ण है, किन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि हम किसी विषय–विशेष या किसी क्षेत्र–विशेष में इतनी पात्रता प्राप्त कर लें अथवा इतने पारंगत हो जाएं कि हम लोककल्याण के लिए कुछ महत्वपूर्ण योगदान कर सकें।

यह अंक आप के हाथों में सौंपते हुए अत्यंत प्रसन्नता हो रही है। इस अंक के साथ ही पत्रिका दस वर्ष पूर्ण कर ग्यारहवें वर्ष में प्रवेश कर रही है जो सभी रचनाकारों, उनके परिवारजन, उनकी प्रकाशन संस्थाओं के सहयोग एवं आशीर्वाद के बिना सम्भव नहीं हो पाता। इसलिए उन सभी के प्रति 'पारस परस' परिवार की ओर से हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। इस अंक में भी जिन रचनाकारों की रचनाएं ली गयी हैं उनके तथा उनके परिवार, प्रकाशक आदि के प्रति हृदय से आभार प्रकट करते हैं और आशा करते हैं कि भविष्य में आप सभी का सहयोग मिलता रहेगा।

शुभ कामनाओं के साथ,

डा0 अनिल कुमार

छोड़ गए क्यूँ हमें अकेले

– डॉ. अनिल कुमार पाठक

छोड़ गए क्यूँ हमें अकेले,
कुल के मुखिया बाबूजी।
समझ न आये, दिल घबराये,
हम हैं दुखिया बाबूजी।।

भरी दुपहरी हुआ अँधेरा,
चारों ओर दुःखों का घेरा।
बीच धार में छोड़ गया है,
मुझे अकेला नाविक मेरा।
संगी–साथी काम न आयें,
डूबी नइया बाबूजी।
समझ न आये, दिल घबराए,
हम हैं दुखिया बाबूजी।।

पुष्प–पथों पर काँटे बिखरे,
मिले हमें क्यूँ जख्म ये गहरे।
रोएँ–बिलखें सभी आत्मजन,
तेरा जाना सबको अखरे।
आत्मसात् दुःख किया सभी ने,
कोई न सुखिया बाबूजी।
समझ न आये, दिल घबराए,
हम हैं दुखिया बाबूजी।।

इतनी जल्दी ही जाना था,
हम सबको यूँ ठुकराना था।
इतना नेह–दुलार दिया क्यूँ,
जीवन भर जब तड़पाना था।
गया चैन,सुख, चली गई–
नयनों की निंदिया बाबूजी।
समझ न आये, दिल घबराए,
हम हैं दुखिया बाबूजी।।

❖❖❖

गीत की कड़ी

– पं0 पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

गीत की कड़ी, जड़ी सी रह गई।

कवि मौन हो गया, कि चन्द्र सो गया,
न लिख सका समाज की दशा
तारिका खड़ी सी रह गई।।

गीत की कड़ी, जड़ी सी रह गई।।

आकाश देखता रहा,
मेघ अश्रु–नीर सा बहा के रो पड़ा,
कली सिहर के फट गई।।

गीत की कड़ी, जड़ी सी रह गई।।

क्षुब्ध बालकों के भूख–ज्वाल से,
चाँदनी सी बालिका के अंग ताप से,
जेठ की दुपहरी भी झुलस गई।
तो गीत की दशा कहाँ कही गई।।

गीत की कड़ी, जड़ी सी रह गई।।

भिक्षुकों की आर्त्त–आह औ पुकार से,
बन्दियों की एक स्वर भरी हुंकार से,
कामिनी की चूड़ियों की तेज धार से,
बादलों की पंक्ति फट गई।

गीत की कड़ी, जड़ी सी रह गई।।

❖❖❖

नव-निर्माण

- महेन्द्र भटनागर

मैं निंरतर राह नव–निर्माण करता चल रहा हूँ।
और चलता ही रहूँगा !
राह –जिस पर कंटकों का
जाल, तम का आवरण है,
राह –जिस पर पत्थरों की
राशि, अति दुर्गम विजन है।
राह –जिस पर बह रहा है
टायफूनी–स्वर–प्रभंजन,
राह –जिस पर गिर रहा हिम
मौत का जिस पर निमंत्रण।

मैं उसी पर तो अकेला दीप बनकर जल रहा हूँ।
और जलता ही रहूँगा।
आज जड़ता–पाश, जीवन–
बद्ध, घायल युग–विहंगम।
फड़फड़ाता पर, स्वयं
प्राचीर में फँस, जानकर भ्रम।
मौन मरघट स्तब्धता है
स्वर हुआ है आज कुंठित।
सामने बीहड़ भयातंकित
दिशाएँ कुहर गुंठित।
विश्व के उजड़े चमन में फूल बनकर खिल रहा हूँ।
और खिलता ही रहूँगा।

❖❖❖

भारतवर्ष

– महावीर प्रसाद द्विवेदी

जै, जै प्यारे देश हमारे, तीन लोक में सबसे न्यारे ।
हिमगिरी–मुकुट मनोहर धारे, जै जै सुभग सुवेश ।। जै जै भारत देश ।।1।।

हम बुलबुल तू गुल है प्यारा, तू सुम्बुल, तू देश हमारा ।
हमने तन–मन तुझ पर वारा, तेजः पुंज–विशेष ।। जै जै भारत देश ।।2।।

तुझ पर हम निसार हो जावें, तेरी रज हम शीश चढ़ावें ।
जगत पिता से यही मनावें, होवे तू देशेश ।। जै जै भारत देश ।।3।।

जै जै हे देशों के स्वामी, नामवरों में भी हे नामी ।
हे प्रणम्य तुझको प्रणमामी, जीते रहो हमेश ।। जै जै भारत देश ।।4।।

आँख अगर कोई दिखलावे, उसका दर्प दलन हो जावे ।
फल अपने कर्मों का पावे, बने नाम निःशेष ।। जै जै भारत देश ।।5।।

बल दो हमें ऐक्य सिखलाओ, सँभलो देश होश में आवो ।
मातृभूमि–सौभाग्य बढ़ाओ, मेटो सकल कलेश ।। जै जै भारत देश ।।6।।

हिन्दू मुसलमान ईसाई, यश गावें सब भाई–भाई ।
सब के सब तेरे शैदाई, फूलो–फलो स्वदेश ।। जै जै भारत देश ।।7।।

इष्टदेव आधार हमारे, तुम्हीं गले के हार हमारे ।
भुक्ति–मुक्ति के द्वार हमारे, जै जै जै जै देश ।। जै जै भारत देश ।।8।।

❖❖❖

माटी का कर्ज

– महावीर प्रसाद 'मधुप'

प्रणहित प्राणोत्सर्ग सदा से अपनी परिपाटी है,
अपने गौरव की गाथा कहती हल्दीघाटी है।
सौ–सौ स्वर्गों से बढ़कर है भारत भूमि हमारी,
माथे का सिन्दूर देश की पावनतम माटी है।

जिस माटी में जन्म लिया, जिस माटी में पल पाये,
जिस माटी में खेल–कूद कर गीत प्रीत के गाये।
समझो उसे न माटी, वह माटी अपनी माता है,
सावधान रहना है उस माटी की लाज न जाये।

माटी में मिलकर माटी की काया मिट जानी है,
माटी में मिल गई शान, फिर हाथ नहीं आनी है।
जो न फर्ज के लिए मरे वह जीवन बस माटी है,
जो माटी का कर्ज चुका दे, वही जिन्दगानी है।

जिस माटी से जीवन में अपने रसधार बही है,
जो कुछ अपने पास धरोहर सब जिस माटी की है।
आज उसी माटी पर संकट के बादल घिर आये,
प्राणों का बलिदान आज वह माटी माँग रही है।

उठो जवानों! दुश्मन का माटी में मान मिला दो।
किस माटी के बने हुए तुम, यह जग को बतला दो।
लोहू की कर दो माटी पर न्यौछावर,
खुद मर–मिट कर भारत की माटी का कर्ज चुका दो।

❖❖❖

छाया मत छूना

– गिरिजा कुमार माथुर

छाया मत छूना मन,
होता है दुख दूना मन।
जीवन में हैं सुरंग सुधियाँ सुहावनी,
छवियों की चित्र–गंध फैली मनभावनी,
तन–सुगंध शेष रही, बीत गई यामिनी,
कुंतल के फूलों की याद बनी चाँदनी।
भूली–सी एक छुअन,
बनता हर जीवित क्षण,
छाया मत छूना मन,
होगा दुख दूना मन।
यश है न वैभव है, मान है न सरमाया,
जितना ही दौड़ा तू उतना ही भरमाया।
प्रभुता का शरण–बिंब केवल मृगतृष्णा है,
हर चंद्रिका में छिपी एक रात कृष्णा है।
जो है यथार्थ कठिन,
उसका तू कर पूजन–
छाया मत छूना मन,
होगा दुख दूना मन।
दुविधा–हत साहस है, दिखता है पंथ नहीं,
देह सुखी हो पर मन के दुख का अंत नहीं।
दुख है न चाँद खिला शरद–रात आने पर,
क्या हुआ जो खिला फूल रस–बसंत जाने पर?
जो न मिला भूल उसे,
कर तू भविष्य वरण,
छाया मत छूना मन,
होगा दुख दूना मन।

❖❖❖

जंगल

- कीर्ति नारायण मिश्र

किसी अनजानी जगह में
कोई अनजाना
किससे राह पूछे।
जहाँ सबको अपनी–अपनी पड़ी हो
वहाँ कौन किसकी बात सुने।

यहाँ सबने सीखी हुई है बन्द रहने की कला,
हाय–हलो वाले कैसे पूरा खुलें भला।
नपी–तुली–सधी मुस्कुराहटें
और हिलते हाथ,
कब तक दें साथ।

जहाँ हर कोई अकेला हो
किसी को किसी की न हो खबर
जहाँ अन्तर के तारों पर बजते हों।
अलग–अलग स्वर
वहाँ भी–
पौधे, बौर, वृक्ष, फूल और कलियाँ,
जंगल और झरने, जलचर और नदियाँ।
सुनाते रहते हैं अविराम,
पर्वत को साम।
खुलता रहता है अनायास सबका ताना–बाना,
राह पा लेता है हर भूला–भटका अनजाना।

❖❖❖

नश्तर और नुस्ख़ा

- अमोघ नारायण झा

फूले वनांत के कांचनार।
खेतों के चंचल अंचल से आती रह–रह सुरभित बयार।
फूले वनांत के कांचनार।

मिट्टी की गोराई निखरी,
रग–रग में अरुणाई बिखरी,
कामना–कली सिहरी–सिहरी पाकर ओठों पर मधुर भार।
फूले वनांत के कांचनार !

घासों पर अब छाई लाली,
चरवाहों के स्वर में गाली,
सकुची पगडंडी फैल चली लेकर अपना पूरा प्रसार ।
फूले वनांत के कांचनार !

शाखों से फूटे लाल–लाल,
सेमल के मन के मधु–ज्वाल,

उमड़े पलास के मुक्त हास, गुमसुम है उत्सुक कर्णिकार ।
फूले वनांत के कांचनार !

मंजरियों का मादक रस पी,
बागों में फिर कोयल कूकी,
उत्सव के गीतों से अहरह मुखरित ग्रामों के द्वार–द्वार ।
फूले वनांत के कांचनार !

❖❖❖

कहाँ आ गये

- श्रीकान्त जोशी

हम प्रकाश–यात्री, समय–सारथी
कहाँ आ गये?
इधर सुपरिचित अंधियारे में?
सूरज सिर पर क्षितिज अनावृत
फिर भी हम सब भटक गये हैं गलियारे में।
अपने ही आकाशदीप थे
जलयानों को चट्टानों से रहे बचाते,
अपने ही तट के प्रवाल थे
जिनकी खातिर दसों दिशाओं, दूर समुद्रों के जन आते।
अपना ही है पोत हमारा अपना ही है,
अपने ही आकाश–दीप से टकराया है।
निर्णय के इतिहास–क्षणों में मल्लाहों को–
दिशा–विमर्च्छित
पाखण्डी
अकसर पाया है।
हम भी तो औरों–जैसे ही उलझ गए वारे–न्यारे में।
चिन्तन के ऊँचे शिखरों के,
निकट ढूह हैं खड़े कर्म के।
सत्ता के प्रत्यक्षवाद से
ध्रुव कँपते हैं प्रजा–धर्म के,
एक अनिश्चय हमें दूसरे–
अति–निश्चय तक पहुँचाता है।
थोड़े नहीं, करोड़ों का संकल्प विकल्पित हो जाता है।
कुछ ही हैं पर शब्द–बीज मैं
अपने बल पर फेंक रहा हूँ।
तूती की आवाज भले ही नक्कारे में।
कहाँ आ गये इधर सुपरिचित अंधियारे में?

❖❖❖

मौन

- महेश चंद्र द्विवेदी

मेरा छः वर्ष का पोता भ्रमित होकर,
दुनिया की चालों से चकित होकर।
एक निश्छल उत्तर की आशा में,
अनुभवी बाबा से ज्ञान की पिपासा में।
एक दिन पूछ बैठा मेरी आँखों में झाँककर,
क्या सचमुच सत्य होता है विजयी असत्य पर?
और पौत्र के समक्ष आज मैं मौन हूँ।

मेरे गुरुओं ने हर युग में राम की जीत–
और रावण की हार होना पढ़ाया था।
मेरे पिता ने मुझे असत्य पर अंत में,
सदैव सत्य का वर्चस्व होना बताया था।
भगवद्गीता में कृष्ण ने दिग्भ्रमित अर्जुन को,
निर्द्वन्द्व हो धर्मयुद्ध लड़ने का उपदेश सुनाया था।
अपने पुत्र को इसी प्रश्न पर मैं ने निश्शंक,
हो उसे सत्यमेव जयते का मार्ग दिखाया था।
परन्तु पौत्र के समक्ष आज मैं मौन हूँ।

ऐसा नहीं है कि गत युगों में प्रतिदिन,
प्रतिपल सत्य असत्य को पछाड़ता था।
तब भी मथुरा में कंस निज भगिनी के,
पुत्रों को जन्मते ही पटककर मारता था।
पर जब भी दुष्टों के पाप का घड़ा,
ऊपर तक भरकर छलकने लगता था।
उनके दमन को कोई राम कोई कृष्ण,
किसी माँ के गर्भ में मचलने लगता था।
आज मैं इतना भी किस मुँह से कहूँ?
अतः पौत्र के समक्ष आज मैं मौन हूँ।

❖❖❖

शीर्षक की तरह

- भोला पंडित प्रणयी

तुम हमारे संघर्षशील जीवन का सच
आज नहीं तो कल
अवश्य जान जाओगे
हवा में तैरती खुशबू की तरह।
तुम्हारी उड़ान शून्य में
भटकती पाखी की तरह
जमीन से बहुत ऊपर तो है
लेकिन, घोंसले में वापसी पर
तुम्हारी चोंच में
एक भी दाना नहीं होगा ।

मानवीय दृष्टि का यह अंधत्व ही
हमारी गुलामी का मूल है ।
एक सार्थक बहस के बाद ही
यह समझोगे कि कहाँ तुम्हारी भूल है ।

तुम अपने खंडित अस्तित्व पर
कब तक आत्मश्लाघा की
ऊँची मीनार खड़ी करते रहोगे ?

तुम्हारी केन्द्रीय शक्ति का पता सबको है
और इधर
असहमतियों के प्रभंजन को
तुम्हारे खोखलेपन का पता है ।
तुम्हें तो कविता की तरह
भीतर और बाहर
एक समान जीना चाहिए
एक शीर्षक की तरह ।

❖❖❖

मन! कितना अभिनय शेष रहा

- भारत भूषण

मन!
कितना अभिनय शेष रहा
सारा जीवन जी लिया, ठीक
जैसा तेरा आदेश रहा।

बेटा, पति, पिता, पितामह सब
इस मिट्टी के उपनाम रहे,
जितने सूरज उगते देखो,
उससे ज्यादा संग्राम रहे।
मित्रों मित्रों रसखान जिया,
कितनी भी चिंता, क्लेश रहा!

हर परिचय शुभकामना हुआ,
दो गीत हुए सांत्वना बना।
बिजली कौंधी सो आँख लगीं,
अँधियारा फिर से और लगा।
पूरा जीवन आधा–आधा,
तन घर में मन परदेश रहा।

आँसू–आँसू संपत्ति बने,
भावुकता ही भगवान हुई।
भीतर या बाहर से टूटे,
केवल उनकी पहचान हुई।
गीत ही लिखो गीत ही जियो,
मेरा अंतिम संदेश रहा।

❖❖❖

जब सूरज जग जाता है

– रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

आँखें मलकर धीरे–धीरे,
सूरज जब जग जाता है।
सिर पर रखकर पाँव अंधेरा,
चुपके से भग जाता है।

हौले से मुस्कान बिखेरी,
पात सुनहरे हो जाते।
डाली–डाली फुदक–फुदक कर,
सारे पंछी हैं गाते।

थाल भरे मोती लेकर के,
धरती स्वागत करती है।
नटखट किरणें वन–उपवन में,
खूब चौंकड़ी भरती हैं।

कल–कल बहती हुई नदी में,
सूरज खूब नहाता है।
कभी तैरता है लहरों पर,
डुबकी कभी लगाता है।

पर्वत–घाटी पार करे,
मैदानों में चलता है।
दिनभर चलकर थक जाता,
साँझ हुए फिर ढलता है।

नींद उतरती आँखों में,
फिर सोने चल देता है।
हमें उजाला दे करके,
कभी नहीं कुछ लेता है।

❖❖❖

टूट गया किस्से का तार

– प्रकाश मनु

टूट गया किस्से का तार,
अगड़म–बगड़म गए बाजार,
वहाँ से लाए मोती चार,
दो मोती थे टूटे–फूटे,
बाकी दो हाथों से छूटे,
अगड़म–बगड़म दोनों रूठे।

आगे आया नया बाजार,
पीं–पीं बाजा, सीटी चार,
लेकर बोले अगड़म–बगड़म,
लिख लो, यह सब रहा उधार,
पैसे कल ले लेना यार।
अगड़म उछल–उछलकर चलता,
बगड़म फिसल–फिसलकर बढ़ता,
पीछे पड़ गए कुत्ते चार।

कूद गए पानी में दोनों,
झटपट पहुँचे नदिया पार,
अगड़म रोता इधर खड़ा है,
बगड़म भी उखड़ा–उखड़ा है,
अब ना पीं–पीं, अब ना बाजा,
फूटा घुटना, फूट गया सिर–
टूट गया किस्से का तार।

❖❖❖

टीचर जी मत पकड़ो कान

– डॉ. रूप चंद्र शास्त्री 'मयंक'

टीचर जी!
मत पकड़ो कान,
सर्दी से हो रहा जुकाम।

लिखने की नहीं मर्जी है,
सेवा में यह अर्जी है।
ठंडक से ठिठुरे हैं हाथ,
नहीं दे रहे कुछ भी साथ।

आसमान में छाये बादल,
भरा हुआ उनमें शीतल जल।
दया करो हो आप महान,
हमको दो छुट्टी का दान।

जल्दी है घर जाने की,
गर्म पकौड़ी खाने की।
जब सूरज उग जायेगा,
समय सुहाना आयेगा।
तब हम आयेंगे स्कूल,
नहीं करेंगे कुछ भी भूल।

❖❖❖

लल्लू जी की पतंग

- शादाब आलम

बातें करे हवा के संग,
लल्लू जी की लाल पतंग।

आसमान में लहर रही है,
एक जगह न ठहर रही है।

इधर भागती उधर भागती,
खूब करे मस्ती हुड़दंग।

हरी, गुलाबी, नीली, काली,
की इसने छुट्टी कर डाली।

बीस पतंगें काट चुकी है,
बड़ी बहादुर, बड़ी दबंग।

सभी पतंगों से सुंदर है,
सबकी इस पर टिकी नजर है।

ललचाता है सबको इसका,
अति प्यारा मनमोहक रंग।

❖❖❖

वे बहुत सारे हैं

- भावना मिश्र

वे बहुत सारे हैं
वे खूब सारे हैं।
अक्सर जो मिल जाते हैं–
बड़े–बड़े शहरों की–
छोटी–छोटी बस्तियों में
मन्दिरों के बाहर
सीढ़ियों पर कंचे खेलते–
गुजार देते हैं सारा दिन।
पर शायद ही झाँकते हों कभी
मन्दिर के भीतर,
हो सकता है वे नास्तिक न हों, पर,
जिन्होंने चखा हो भूख का स्वाद
अक्सर लकवा मार ही जाता है।
उनकी आस्था को.
वे जो सिग्नल पर बेचते हैं
प्रेमियों को गुलाब।
वे अनपढ़
कलम भी बेचते हैं।
रईस शहरों की
खूबसूरत सड़कों पर
बेहया के फूल से खिले रहते हैं जो।
वे कहीं ठेला धकेलते हैं
कहीं बनाते हैं कटिंग चाय
तत्पर रहते हैं आपके जूते चमकाने को
और जो जूते भी नहीं चमका पाते
वे मिल जाते हैं कूड़े के ढेर से जूठन बीनते.
गोल रोटी की लय पर
गोल–गोल घूमती हैं इनकी आँखें।
ये नहीं जानना चाहते
मोनालिसा की मुसकान का रहस्य.
ये तो बस महसूसना चाहते हैं
उस एक क्षण को
जब पेट भरा होता है
और आत्मा तृप्त।

❖❖❖

ओ! दीप जलाने वाले

– बीना रानी गुप्ता

ओ! दीप जलाने वाले तू इतना सुनता जा।
हर अंधियारे कोने में तू दीप जलाता जा।

अमावस्या की इस बेला मे, तू कण–कण उज्ज्वल कर दे,
सारी भू पर इस बेला में, तू नवजीवन भर दे।
लेकर मानवता का दीप, तू जन–जन में नेह भरता जा।
हर अंधियारे कोने में, तू दीप जलाता जा।

ओ! दीप जलाने वाले...

रूठे होठों पर तू हास जगा दे,
सूनी आँखों में तू मुस्कान बिखरा दे।
क्लान्त पथिक को तू विश्राम देता जा,
हर अँधियारे कोने में तू दीप जलाता जा।

ओ! दीप जलाने वाले.....
अपने हृदय की कालिमा को धवलित कर ले,
अपने परायों की आत्मा को जागृत कर दे।
अमर शहीदों को कुछ दीप अर्पित करता जा,
हर अँधियारे कोने में तू दीप जलाता जा।

ओ! दीप जलाने वाले तू इतना सुनता जा।
हर अँधियारे कोने में तू दीप जलाता जा।

❖❖❖

निरर्थक है

– प्रीति अज्ञात

निरर्थक है प्रमाणित सत्य को
अस्वीकारते हुए,
करवट बदल सो जाना।
निरर्थक है भावों को
शब्दों की माला पहनाते
आशंकित मन का
मध्य मार्ग ही
उनका गला घोंट देना।
निरर्थक है बार–बार धिक्कारे हुए
शख़्स का
उसी चौखट पर मिन्नतें करना।
निरर्थक है फेरी हुई आँखों से
स्नेह की उम्मीद।
निरर्थक है बीच राह पलटकर
प्रारम्भ को फिर पा लेना।
हाँ, सचमुच निरर्थक ही है
हृदय का मस्तिष्क से
अनजान बन जाने का हर आग्रह।
गर समेटनी हों
स्मृतियों के अवशेष,
टूटते स्वप्नों के साथ
विदा ही प्रत्युत्तर हो।
हर मोड़ पर खड़े चेहरों का
और समझौता ही बनता रहे।
गतिमान जीवन का एकमात्र पर्याय
तो फिर सार्थक क्या?
ये जीवन भी तो
जिया यूँ ही
निरर्थक!

❖❖❖

सिमटती नदी

- निधि सक्सेना

सिमट रही है नदी
सिकुड़ता जा रहा है आँचल उसका।
डरने लगी है शहर के कोलाहल से,
डरने लगी है गाँव के सन्नाटे से।
अब नहीं भागती वो
इठलाती मदमाती मुक्त,
उसका मुख अब दर्प से दिपदिपाता नहीं
बल्कि क्षोभ से काला पड़ गया है।
कि उसकी देह कुतरता जा रहा है मनुष्य।
अब उसमें न प्रेम बचा है न विरह
अब वो अपने भाग्य पर चिहुँकती नहीं।
बस वीभत्सता की आकृति भर है।
तेजाब से जली देह सी...
अब बहुत चुप रहती है वो
कलकल नहीं करती,
उसके किनारों पर खड़े हो कर
अब कोई गीत नहीं गुनगुनाता।
उसकी थिरकन पर कोई विभोर नहीं होता।
बस देखता है उपेक्षा भरी दृष्टि से...
वो थक गई है ढोते ढोते
मनुष्य के अन्धविकास का मल,
मनुष्य के विचारों का मल।
वो थक गई है रोते, रोते
अपनी निरीहता से झुक गई है।
कदाचित महानिर्वाण की तैयारी में है।
कि जगह खाली करे
खून की नदियाँ फिर बहें।

❖❖❖

तीन औरतें

– इन्दु जैन

एक औरत
जो महीना भर पहले जली थी
आज मर गयी।
एक औरत थी
जो यातना सहती रही
सिर्फ पाँव की हड्डी टूट जाने से
बहाना ढूँढ़ बैठी न जीने का
दिल जकड़ लिया
मर गयी।
बरसों पहले हुआ करती थी
एक लड़की
याद आती है
अच्छी खासी समझदार और दबंग
अनचाहे ब्याह
नेहहीन मातृत्व से रोगी हुई
छोड़ दी दवा
वो भी मर गयी अपनी इच्छा से।
तीन मौतें जब राहत देने लगें
मरने और खबर सुनने वालों को
कहीं जबरदस्त गड़बड़ है।
घाव बहुत गहरा
संवेदना हादसा है
गठे हुए समाज में
गठान गाँठ है,
गाँठ फाँसी का फंदा
जब इन्सान हद से बढ़कर
हिम्मत करता है,
जीने के लिए जान दे देता है,
तब मर जाता है इतिहास।

पुस्तकालय संग्रहालय
धू धू जलने लगते हैं।
आदमी अपनी गर्दन
हाथ पर उठाये
हाट में निकल आता है।
मरने वाला अपने साथ
तमाम को लिए चला जाता है।
खाँसने लगता है साहित्य
कविता थूक के साथ खून उगलने
लगती है।

❖❖❖

तोड़ देती हैं बेड़ियाँ अक्सर

- अलका मिश्रा

तोड़ देती हैं बेड़ियाँ अक्सर,
कैद में रह के बेटियाँ अक्सर।

चीर देती हैं दिल के दामन को,
तंग जेहनों की बर्छियाँ अक्सर।

ख्वाब आँखों में छोड़ कर आधे,
जाग जाती हैं लड़कियाँ अक्सर।

जहर रिश्तों में घोल देती हैं,
सख़्त लहजे की तल्खियाँ अक्सर।

नाम पर्ची पे उसका लिख, लिख के,
दिल लगाता है अर्जियाँ अक्सर।

जब भी सोचूँ मैं उसके बारे में,
याद आती हैं खूबियाँ अक्सर।

जिन्दगी औरतों को देती हैं,
घर की छोटी सी खिड़कियाँ अक्सर।

दिल में चुभती हैं आज भी मेरे,
टूटे रिश्तों की किर्चियाँ अक्सर।

❖❖❖

आँखों में आँसू होठों पर दुआ

- अनामिका तिवारी

आँखों में आँसू, होंठों पर दुआ,
दरवाजे पर इन्तजार करती मेरी माँ––
देखती है स्कूल जाते नन्हें बच्चों में मुझे अब भी,

जानती हूँ कि बहुत दूर हूँ उससे, मैं
फिर भी, घर वापस आते बच्चों में
ढूँढ़ती हैं उसकी आँखें मुझे
अभी भी, हर रोज।

सँवारती है मेरी एक–एक चीज
करती हुई पिता जी से मेरे बचपन की बातें
दरवाजे पर इन्तजार करती मेरी माँ।

सो जाने पर प्यार से सहलाती मेरे सिर को,
छुपाती है अपने हर गम
मुझे देख मुस्कराती
दरवाजे पर इन्तजार करती मेरी माँ।

पत्थर के देवताओं से
कई–कई दिन भूखी–प्यासी रहकर भी
माँगती है मेरी लम्बी उम्र के लिए दुआ।

आसमान से भी ज्यादा अपनी बाहें फैलाये
करती है मुझे प्यार,
सागर से भी प्यारी आँसू छलकाती
दरवाजें पर इन्तजार करती मेरी माँ।

❖❖❖

प्रेम कविता

– नंदा पाण्डेय

क्या हो गया है,
इन दिनों मेरी कलम को,
डर लगता है,
कहीं इश्क तो नहीं हो गया,
मेरी कलम को।
कागज देखते ही झूमने लगती है,
कभी दुनिया भर का प्यार उमड़ आता है।
उसके मन में
तो कभी नफरत।
कभी प्रेम से विभोर हो गाने लगती है,
तो कभी वियोग में रोती है।
कभी ईर्ष्या लिखती तो कभी,
डाह में जलती है।
लिखते हुए उसे खुद भी पता नहीं होता
आखिर लिखना क्या चाहती है।
और जब कभी रूठती है तो
कई–कई दिनों तक चुपचाप बिलखती रहती है।
डरती हूँ, कहीं सचमुच में इश्क तो नहीं हो गया मेरी कलम को।
पल–पल जलाती है खुद को
अपने मन की हर परत खोल कर
ऊँटपटांग लिखने बैठ जाती है।
न जाने किस अपमान की लपटों में दहक रही है मेरी कलम इन दिनों !
कोशिश कर रही हूँ
प्रतिक्षण आहुति दे रही कलम के
अंतर्मन को पढ़ने की और
जी रही हूँ इसी उम्मीद में की
असंभव कुछ भी नहीं
बेशक टुकड़े–टुकड़े हृदय के अवशेषों के साथ ही सही पर
एक बार फिर से लिखेगी मेरी कलम
प्रेम–कविता इश्क में होते हुए।

❖❖❖

जो कह न सकूँ मैं तुमसे

- तारादेवी पांडेय

जो कह न सकूँ मैं तुमसे, उसको चित्रित कर दोगे?
ओ चित्रकार! क्या मुझको, ऐसी छवि दिखला दोगे?

चिर वियोगिनी है आती, पथ पर मोती बरसाती,
तारों के दीप जलाती, कुछ रोती कुछ–कुछ गाती।
उसके भीगे गालों को, तुम भी क्या देख सकोगे?
ओ चित्रकार! क्या मुझको, ऐसी छवि दिखला दोगे?

निर्जनता होवे मग में, बाला हो अस्थिर चंचल,
हो तेज हृदय की धड़कन, हिलता हो जिससे अंचल।
करुणा की उस चितवन को, पद पर अंकित कर दोगे?
ओ चित्रकार! क्या मुझको, ऐसी छवि दिखला दोगे?

तारों की ज्योति मलिन हो, प्राची नभ उज्ज्वल तर हो,
ऊषा सिन्दूर लगाती हो प्रात मधुर सुखकर हो।
इस शान्त दृश्य को पावन, कैसे बन्दी कर लोगे?
ओ चित्रकार! क्या मुझको, ऐसी छवि दिखला दोगे?

भोले–भाले से आँसू, तारों की होड़ लगाते,
अपनी उस उज्ज्वलता का, भी दर्शन करवा जाते।
उसके रहस्यमय जीवन का, भेद मुझे कह दोगे?
ओ चित्रकार! क्या मुझको, ऐसी छवि दिखला दोगे?

फिर बहुत दूर पर धुँधली–सी, छाया एक दिखाना,
वे प्रिय आते ही होंगे, ऐसा कुछ भाव बनाना।
उन बड़ी–बड़ी आँखों से, आँसू भी ढलका दोगे?
ओ चित्रकार! क्या मुझको, ऐसी छवि दिखला दोगे?

बस अन्तिम दृश्य बनाना, दोनों का मिलन दिखाना,
उनकी मीठी सिसकी से, तुम कभी सिसक मत जाना।
क्या सचमुच ऐसा सुन्दर, वह चित्र पूर्ण कर दोगे?
ओ चित्रकार! क्या मुझको, ऐसी छवि दिखला दोगे?

❖❖❖

वेदना

- छाया त्रिपाठी

वेदना तुम पास आकर
इस हृदय का बल बनो।

अश्रु अंतस में हैं ठहरे,
दे रहे हैं घाव गहरे।
जिन्दगी के हर कदम पर,
ज्यों लगे दिन रात पहरे।
वेदना तुम आज आकर,
चक्षुओं का जल बनो।
वेदना तुम पास आकर,
इस हृदय का बल बनो।

रूठ बैठे स्वप्न सारे,
हम हुए हैं बेसहारे।
क्या बचा अब शेष कुछ भी,
जब कोई अपनों से हारे।
वेदना तुम डगमगाती,
आस का सम्बल बनो।
वेदना तुम पास आकर,
इस हृदय का बल बनो।

टूटती हर कामना जब,
बस तुम्हें ही थामना तब।
फिर उजालों से भला मन,
सामना कैसे करे अब।
वेदना तुम मुस्कुराकर,
हर व्यथा का हल बनो।
वेदना तुम पास आकर,
इस हृदय का बल बनो।।

❖❖❖

हम सर वाले हैं

- प्रमोद तिवारी

दुनिया वाले चाकू, छुरी
कटारी रखते हैं,
हम सर वाले हैं
पूरी तैयारी रखते हैं।

वो देखो सलाम का पहला
पत्थर आया है,
अभिवादन में हमने अपना
सर सहलाया है।
काँटों के संग रहते हैं,
फुलवारी रखते हैं।

अधरों पर अंगार धरे हैं,
फिर भी गाते हैं।
लोग बाग बस इतने भर में,
ही जल जाते हैं।
फिर भी दुआ सलाम,
मोहल्लेदारी रखते हैं।

मेरी प्यास बड़ी है,
सारे सागर छोटे हैं।
इसीलिये हम मैखानों से
प्यासे लौटे हैं।
पीने और पिलाने में
खुद्दारी रखते हैं।

भीड़–भाड़ से हटकर,
अपनी राह बनाते हैं।
राह बनाते ही पैरों में,
पर लग जाते हैं।
इन्हीं पैरों से सफर सुहाना
जारी रखते हैं

❖❖❖

भीड़ में सबसे अलग, सबसे जुदा चलता रहा

- जहीर कुरैशी

भीड़ में सबसे अलग ,सबसे जुदा चलता रहा,
अंत में हर चलने वाला 'एकला' चलता रहा।

रात भर चलते रहे सपने,यहाँ तक ठीक है,
ये न पूछो रात भर सपनों में क्या चलता रहा।

रुक गए हम लोग, इस कारण ही पीछे रह गये,
हम रुके लेकिन, हमारा रास्ता चलता रहा।

कौन अच्छा है, बुरा है कौन, इसमें मत उलझ,
ये तो दुनिया है, यहाँ अच्छा–बुरा चलता रहा।

तीन अक्षर वासना को एक कमरा चाहिए,
ढाई आखर प्यार का पंछी खुला चलता रहा।

जो पुराना था, उसी में करके थोड़ी काँट–छाँट,
हर महीने ही कोई फैशन नया चलता रहा।

जिन्दगी में सिर्फ ऐसे लोग ही कुछ कर सकें,
जिनके संग 'करने या मरने' का नशा चलता रहा।

❖❖❖

नारी

- पं. चतुर्भुज मिश्र

करुणा की जो स्रोत उसी की करुण कहानी,
सदियों की यह व्यथा मलिन मन की मनमानी।

जनम दिया उसने हमको और अपना दूध पिलाया,
हम सो जायें जाग–जाग कर जिसने रैन बिताया।
सारी दुनियाँ छोड़ नेह बंधन हमसे बँध जाता,
हमको आये छींक चैन पल में उसका उड़ जाता।
उससे बढ़कर क्या दाता है, क्या कोई बलिदानी,
करुणा का जो स्रोत उसी की करुण कहानी।

हँस, हँस कर सहती पीड़ा मन की मन ही में मारे,
फूल लुटाया है हम पर और लिया सदा अंगारे।
जो कुछ हमने दिया उसी में कर संतोष दिखाया,
त्याग, तपस्या, प्रेम, स्नेह कर, कर के हमें सिखाया।
उसके मन की थाह यहाँ कब किसने है जानी,
करुणा की जो स्रोत उसी की करुण कहानी।

माता बनकर पाला पोसा बहना बनकर प्यार किया,
बनी संगिनी जीवन भर की जन–जन का उपकार किया।
सुख में पीछे, दुख में आगे ही रहती जो आई,
संग साथ रहती जीवन भर बनकर जो परछाई।
उसकी कदर कहाँ की हमने, व्यर्थ बने है ज्ञानी,
करुणा की जो स्रोत उसी की करुण कहानी।

❖❖❖

छोड़ आया हूँ

- गौरव गिरिजा शुक्ला

मैं आज अपना घर छोड़ आया हूँ,
धूप में निकला हूँ मगर साया छोड़ आया हूँ।

आँधियाँ भी देखेंगी मेरे हौसले की ताकत,
टूटे हुए मकान में जलता चिराग छोड़ आया हूँ।

दुनिया की नजरों में हम जुदा हो गए लेकिन,
मैं तेरे–मेरे दरमियां सारी दीवारें तोड़ आया हूँ।

इज्जत–शोहरत, मोहब्बत–वफा की ख़्वाहिश नहीं,
दिल के जज्बात, बहुत पीछे छोड़ आया हूँ।

किसे फर्क पड़ता है किस हाल में जी रहा हूँ मैं,
जब तू नहीं तो सबसे रिश्ते तोड़ आया हूँ।

मेरी आशिकी के अफसाने बड़े शौक से पढ़ेंगे दुनिया वाले,
मैं अपने कमरे में तेरे खत छोड़ आया हूँ।

तकदीर भी हैरान है मेरा मिजाज देखकर,
मंजिल के करीब आकर अपनी राहें मोड़ आया हूँ।

टूटे दिल में सैलाब है, आँखों में समंदर है लेकिन,
खामोश लबों पर मुस्कुराहट का लिबास ओढ़ आया हूँ।

दुश्मनों के खेमे में जश्न तो है मगर वो रौनक नहीं,
खबर उन्हें भी है, मैं जीती हुई बाजी छोड़ आया हूँ।

❖❖❖

सीने में क्या है तुम्हारे

– अक्षय उपाध्याय

कितने सूरज हैं तुम्हारे सीने में
कितनी नदियाँ हैं
कितने झरने हैं।

कितने पहाड़ हैं तुम्हारी देह में
कितनी गुफाएँ हैं।

कितने वृक्ष हैं
कितने फल हैं तुम्हारी गोद में।

कितने पत्ते हैं
कितने घोंसले हैं तुम्हारी आत्मा में।

कितनी चिड़ियाँ हैं
कितने बच्चे हैं तुम्हारी कोख में।

कितने सपने हैं
कितनी कथाएँ हैं तुम्हारे स्वप्नों में

कितने युद्ध हैं
कितने प्रेम हैं।

केवल नहीं है तो वह मैं हूँ
अभी और कितना फैलना है मुझे
कितना और पकना है मुझे
कहो मैं भी
तुम्हारी जड़ों के साथ उग सकूँ

कितने सूरज हैं तुम्हारे सीने में
कितने सूरज ?

❖❖❖

अनावृत

- कमलेश

ग्रीष्म की वर्षा से धुली हवा हिलती पत्तियाँ
लखते पेड़ पर
रुग्ण शरीर हल्का हो उठता है अचानक।
मस्तिष्क भुनभुना जाता है कान में एक गर्मी
हमारे रास्ते पर पड़ी परत को पिघलाती
अनावृत करती जाती है ––
कविता माँगती है तीखी सम्वेदना

इस समय
शहर में सड़क पर भागते स्कूटरों के शोर के बीच
इस दुमंजिले की बजाय
हम सिर्फ पहाड़ी घाटियों में झरनों के पास
पेड़ों के बीच किसी कुटी में भी
हो सकते थे।
याद आता है जापानी कवि.....

तुम शताब्दियों पीछे
छोड़ आये हो अपनी भूमि।
भाषा में–
अजनबी शब्दों की बहुतायत है इस समय
शब्द भी तुम्हें मजबूर करते हैं
अनावृत करने को।

❖❖❖

वादे थे फिर वादे ही वो टूट गये तो क्या कीजे

– उपेन्द्र कुमार

वादे थे फिर वादे ही वो टूट गये तो क्या कीजे,
साथी थे फिर साथी ही वो छूट गये तो क्या कीजे।

तन–मन से प्यारे थे सपने चाह ने जो दिखलाये,
सोच की आँखें खुल जाने पर टूट गये तो क्या कीजे।

प्यार के वो अनमोल खजाने आस रही तो अपने थे,
उन्हें निराशा के अँधियारे लूट गये तो क्या कीजे।

जीवन नैया के जो चप्पू हमने मिलकर थामे थे,
अनहोनी के तेज भँवर मे टूट गये तो क्या कीजे।

खुशहाली ने जिनकी खुशी में घर संसार सजाया था,
बुरे वक्त में मीत वही जो रूठ गये तो क्या कीजे।

बचा हवा का दामन निकली हम बेचारे क्या करते,
इंतजार में भाग हमारे फूट गये तो क्या कीजे।

दर्द के रिश्ते इनसानों में जब तक थे मजबूत रहे,
प्यार के धागे कोमल थे जो टूट गये तो क्या कीजे।

❖❖❖

गीतों में मेरे डूबो तो

- आनंद तिवारी

मेरे अंतस में मत झाँको
आँख तुम्हारी नम होगी।
गीतों में मेरे डूबो तो
पीड़ाएँ कुछ कम होंगी ।

जीवन तो मृगतृष्णाओं के
जंगल जैसा है।
जैसा तुमने सोचा समझा
जीवन वैसा है।
एक चढ़ाई पार करो बस
धरती आगे सम होगी ।

अंतहीन ऊर्जा बिखरी
जो मुझे दीखती है
गिर–गिरकर फिर–फिर मत चढ़ना
उम्मीद सीखती है
लक्ष्य बना कर नहीं चले तो
सोच तुम्हारी भ्रम होगी ।

नदिया पर्वत काट–काट कर
आगे बढ़ा करे।
अपनी ऊँचाई सिर लादे
पर्वत डरे–डरे।
साथ–साथ चलने की इच्छा
जीवन का अनुक्रम होगी ।

❖❖❖

तुम लौट आना

– आनंद गुप्ता

तुम लौट आना
जैसे किसी स्त्री के गर्भ में
लौटता है नया जीवन।
जैसे लौट आती है आवाजें
चट्टानों से टकराकर हर बार।
जैसे हर पराजय के बाद
फिर से लौट आती है उम्मीद।

तुम उस तरह मत लौटना
जैसे क्षणिक सुख बिखेर कर
वापस लौट आती है लम्बी उदासी।

तुम लौटना
जैसे गहरे जख्म के बाद
खिलखिलाती हुई
वापस लौट आती है शरीर पर त्वचा।
जैसे पतझड़ में टूटी पत्तियाँ
लौट आती है वसंत में।
जैसे आँगन में फुदकती शावक चिड़ियाँ
लौट आती है घोंसले में सुरक्षित।

तुम लौट आना हर बार
जैसे लम्बी दूरी तय करके
प्रवासी पक्षियाँ
सही रास्ते लौट आते हैं अपने घर
तुम लौट आना
उन शब्दों की तरह
जिनसे मेरी हर कविता मुकम्मल होती है।

❖❖❖

बसंत का गीत

- अपूर्व शुक्ल

कौन सा
अनजाना गीत है वह जिसे
चैत्र की भीगी भोर में
चुपके से गा देती है
एक ठिगनी, बंजारन चिड़िया
विरही, पत्र–हीन, नग्न वृक्ष
के कानों में
कि गुलाबी कोंपलों की
सुर्ख लाली दौड़ जाती है।
उदास वृक्ष के
शीत से फटे हुए कपोलों पे
और शरमा कर
नये पत्तों का स्निग्ध हरापन
ओढ़ लेता है, वृक्ष
खोंस लेता है जूड़े में
लाल–पीले फूलों की स्मित हँसी।
लचकती, पुनर्यौवना शाखाओं को
कंधों पर उठा कर
समुद्यत हो जाता है
उत्तप्त ग्रीष्म के दाह में
जलने के लिए।
क्रोधित सूर्य के कोप से आदग्ध
पथिकों को
आँचल मे शरण देने के लिए।
सिर्फ बसंत में जीना
बसंत को जीना–
ही तो नही है जिंदगी।
क्रूर मौसमों के शीत–ताप
सह कर भी
बचाये रखना।
थोड़ी सी सुगंध, थोड़ी हरीतिमा
थोड़ी सी आस्था, और
उतनी ही शिद्दत से
बसंत का इंतजार करना–
भी तो जिंदगी है।
हाँ यही तो गाती है
ठिगनी बंजारन चिड़िया
शायद!

❖❖❖

मेरे देश में

- गोपाल कृष्ण भट्ट

मेरे देश में हर दिन त्योहार।
दिन दूना और रात चौगुना बढ़ता जाये प्यार।
मेरे देश में हर दिन त्योहार।।

महक उठा मन सौंधी खुशबू जो लाई पुरवाई,
धानी चूनर पहन खेत की हर बाली मुसकाई।
डाली–डाली फूल खिले मौसम ने ली अँगड़ाई,
गली मोहल्ले घर–घर में खुशियों की बँटी मिठाई।
झूम–झूम कर नाचो, आओ,गाओ मेघ मल्हार।
मेरे देश में हर दिन त्योहार––––––

आता है हर साल दशहरा,टिक्का,ईद,दिवाली,
क्वार करे कातिक का स्वागत,सरदी देव–दिवाली।
पौष बड़ा,मावठ फुहार,होली में मीठी गाली,
ढोल,नगाड़े,चंग,मजीरा,ढफ,अलगोजा,ताली।
घूम–घूम कर रँगो–रँगाओ,गाओ ध्रुपद धमार।
मेरे देश में हर दिन त्योहार––––––

आगे पीछे दौड़े आते पर्व मनोरथ सारे,
दुःख हल्के करते संस्कृति के ये हैं अजब सहारे।
सर्वधर्म समभाव,अतिथि देवो भव से हर नारे,
सत्यमेव जयते,वसुधैवकुटुम्बकम् के गुण न्यारे।
भूम–भूम गोपाल सजाओ, गाओ बसन्त बहार।
मेरे देश में हर दिन त्योहार––––––

दिन दूना और रात चौगुना बढ़ता जाये प्यार।
मेरे देश में हर दिन त्योहार।।

❖❖❖

सृजन स्मरण

महावीर प्रसाद 'मधुप'

जन्म-23 जून, 1928 निधन-19 अक्टूबर, 2002

जाम शहादत का पीकर जो दुनिया में हो गए अमर,
सौ–सौ बार नमन करता मैं उनको नत–मस्तक होकर।
थे सपूत माता के निज कर्तव्य निभा कर चले गये,
मरे स्वयं पर मृत समाज को, अमृत पिला कर चले गये,
माँ के चरणों में सादर सिर–सुमन चढ़ा कर चले गये,
देशभक्ति के गीत अभय आजीवन गाकर चले गये,
गर्व आज करता है भारत जिनकी गौरव–गाथा पर,
सौ–सौ बार नमन करता मैं उनको नत–मस्तक होकर।

सृजन स्मरण

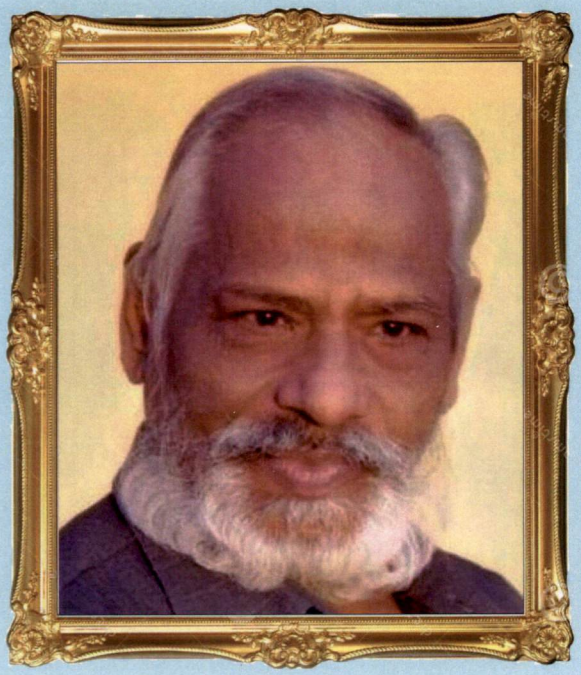

महेन्द्र भटनागर

जन्म- 26 जून 1926 निधन- 27 अप्रैल 2020

शैतान के साम्राज्य में तूफान आया है,
जो जिन्दगी को मुक्ति का पैगाम लाया है।
इंसान की तकदीर को बदलो,
भयभीत हर तस्वीर को बदलो।
हमारे संगठित बल की यही ललकार है।
मासूम लाशों पर खड़ा साम्राज्य हिलता है,
तम चीर कर जन–शक्ति का सूरज निकलता है।
चट्टान जैसे हाथ उठते हैं,
फौलाद से दृढ़ हाथ उठते हैं।
अमन के शत्रु से जो छीनते हथियार हैं !
हमारे संगठित बल की यही ललकार है!
लो रुक गया रक्तिम प्रखर सैलाब का पानी,
अब दूर होगी आदमी की हर परेशानी।
सूखी लताएँ लहलहाती हैं,
नव–ज्योति सागर में नहाती हैं।